खोज

कागज की खोज

मानव सभ्यता के विकास में कागज का आविष्कार एक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी घटना माना जाता है। आज जिस कागज को हम सामान्य और दैनिक उपयोग की वस्तु समझते हैं, उसने ज्ञान के संरक्षण, प्रसार और लोकतंत्रीकरण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कागज के आविष्कार से पहले मनुष्य पत्थर, ताम्रपत्र, ताड़पत्र, भोजपत्र, चमड़े और रेशम जैसे माध्यमों पर लिखता था, जो या तो भारी थे, महंगे थे या लंबे समय तक सुरक्षित नहीं रहते थे।

इतिहासकारों के अनुसार कागज का आविष्कार 105 ईसवी में चीन में हुआ। इसका श्रेय हान वंश के शाही दरबार के अधिकारी त्साई लुन (Cai Lun) को दिया जाता है। उन्होंने पेड़ की छाल, पुराने कपड़े, मछली पकड़ने के जाल और बांस जैसे रेशेदार पदार्थों को पानी में गलाकर, पीसकर और सुखाकर कागज बनाने की एक व्यावहारिक विधि विकसित की। यह पहले से मौजूद लेखन माध्यमों की तुलना में सस्ता, हल्का और अधिक उपयोगी था। चीन में लंबे समय तक कागज बनाने की तकनीक को गुप्त रखा गया, लेकिन धीरे-धीरे यह ज्ञान अन्य क्षेत्रों तक फैल गया। आठवीं शताब्दी में यह तकनीक अरब दुनिया पहुंची, जहां बगदाद और समरकंद जैसे नगर कागज निर्माण के प्रमुख केंद्र बने। इसके बाद कागज़ भारत पहुंचा और यहां फारसी व अरबी पांडुलिपियों के लेखन में इसका व्यापक प्रयोग हुआ। तेरहवीं शताब्दी तक कागज यूरोप पहुंच चुका था, जहां बाद में छापेखाने के आविष्कार के साथ इसने ज्ञान क्रांति को जन्म दिया।

भारत में कागज बनाने की सबसे पहली मिल कश्मीर में लगाई गई थी, जिसे वहां के सुल्तान जैनुल आबिदीन ने स्थापित किया था। सन् 1887 में भी कागज बनाने वाली मिल स्थापित की गई थी, जिसका नाम था टीटा कागज मिल्स, लेकिन ये मिल कागज बनाने में असफल रही। आधुनिक कागज का उद्योग कलकत्ता में हुगली नदी के तट पर बाली नामक स्थान पर स्थापित किया गया।

वैज्ञानिक के बारे में

त्साई लुन (Cai Lun) चीन के हान राजवंश के समय एक प्रमुख विद्वान और शाही अधिकारी थे। उन्हें कागज के आविष्कारक के रूप में जाना जाता है। इससे पहले लेखन के लिए बांस की पट्टियां और रेशम का प्रयोग होता था, जो भारी और महंगे थे। त्साई लुन के इस आविष्कार ने लेखन को सरल बनाया और ज्ञान, शिक्षा तथा प्रशासन के व्यापक प्रसार में ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

सम्मोहित करता विलक्षण पक्षी

सनबिटर्न

क्या कोई पक्षी अपनी चोंच या नुकीले पंजों का प्रयोग किए बिना भी खूंखार शिकारियों को परास्त कर सकता है? सनबिटर्न यह सिद्ध करता है कि भीषण संकट के समय धैर्य और मनोवैज्ञानिक कौशल ही सबसे अचूक प्रहार साबित होते हैं।

डॉ. कैलाश चन्द सैनी
वन्यजीव लेखक, जयपुर

मध्य और दक्षिण अमेरिका के अभेद्य वर्षावनों में, जहां हर आहट एक नए खतरे का उद्घोष होती है, वहां जीवित रहने के लिए केवल शारीरिक शक्ति पर्याप्त नहीं है। इन रहस्यमयी जंगलों में एक ऐसा पक्षी निवास करता है, जिसने यह सिद्ध कर दिया है कि बुद्धि का सटीक प्रयोग दुनिया के किसी भी घातक हथियार से अधिक शक्तिशाली हो सकता है। प्रकृति प्रेमी इसे 'सनबिटर्न' के नाम से जानते हैं। यह न तो गरुड़ जैसी शक्ति रखता है और न ही चीते जैसी तीव्र फुर्ती, फिर भी इसमें एक ऐसा अनूठा रणकौशल है, जो बड़े-बड़े शिकारियों को किंकर्तव्यविमूढ़ कर देता है। इसकी आत्मरक्षा की यह रणनीति महज जान बचाने की कोशिश भर नहीं है, बल्कि शिकारी के मस्तिष्क को भ्रमित कर देने वाला एक गहरा मनोवैज्ञानिक मायाजाल है।

अदृश्यता का आवरण

प्रकृति में विलीन होना- सनबिटर्न की आत्मरक्षा का प्रथम चरण है पूर्णत: अदृश्य हो जाना। नदी के किनारों पर सूखी पत्तियों और कीचड़ के बीच जब यह पक्षी निश्चल खड़ा होता है, तो इसके धूसर-भूरे पंख इसे परिवेश के साथ इस कदर एकाकार कर लेते हैं कि कोई अत्यंत निकट से भी गुजर जाए, तो इसे पहचान नहीं सकता। विज्ञान की शब्दावली में इसे 'क्रिप्टिक कलरेशन' कहते हैं। इसका सीधा अर्थ है स्वयं को परिवेश के रंगों में इस तरह विलीन कर लेना कि शिकारी की दृष्टि आप पर टिक ही न पाए। जब तक संकट टल न जाए, सनबिटर्न किसी पत्थर की भांति अडिग रहकर अपनी शांति को ही अपनी सबसे अभेद्य ढाल बनाए रखता है।

भ्रम का प्रहार : आंखों का धोखा

असली रोमांच तब प्रारंभ होता है, जब छिपने का विकल्प समाप्त हो जाता है। जैसे ही कोई भूखा सर्प या जंगली बिल्ली सनबिटर्न के घेरे में प्रवेश करती है, यह शांत पक्षी अचानक रौद्र रूप धारण कर लेता है। यह पलक झपकते ही अपने पंखों को एक विशाल पंखे की भांति फैला देता है। इस क्षणिक रूपांतरण में वह लघु पक्षी एकाएक एक विशाल और डरावने जीव जैसा प्रतीत होने लगता है। उसके पंखों के भीतर नारंगी, लाल और पीले रंगों के सम्मिश्रण से दो विशाल आकृतियां उभर आती हैं, जो हूबहू किसी खूंखार शिकारी की धधकती आंखों जैसी दिखती हैं।

मनोवैज्ञानिक विजय

वैज्ञानिक इन आकृतियों को 'आई-स्पॉट्स' कहते हैं। एक सुलभ शिकार की तलाश में आया शिकारी, अचानक अपने सम्मुख दो विशाल जलती हुई आंखें देखकर स्तब्ध रह जाता है। उसे भ्रम होता है कि वह किसी पक्षी को नहीं, बल्कि किसी ऐसे दैत्यकार जीव को देख रहा है, जो स्वयं उसे ही अपना ग्रास बना सकता है। सनबिटर्न यहीं नहीं थमता, वह अपने शरीर को एक विशिष्ट लय में झुकाकर और पंखों को थिरकाकर इस भ्रम को इतना जीवंत बना देता है कि शिकारी भय और अनिश्चितता से घिर जाता है। यही एक क्षण सनबिटर्न की विजय सुनिश्चित कर देता है और शिकारी अपनी जान बचाकर वहां से भागने में ही अपनी भलाई समझता है।

जीवन का संदेश

सनबिटर्न की युक्ति, आत्मरक्षा का अर्थ सदैव हिंसा या प्रतिघात नहीं होता हैं। हमें जीवन का एक महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाती है। यह सिखाती है। कभी-कभी बिना चोंच चलाए और बिना पंजा मारे, केवल अपनी बुद्धिमत्ता और दृष्टि के छलावे से भी बड़ी जंग जीती जा सकती है। वर्षावनों की सघनता में आज भी यह पक्षी हमें स्मरण कराता है कि जब संकट विकराल हो, तो धैर्य और मानसिक कौशल ही आपके सबसे अचूक प्रहार सिद्ध होते हैं।

वैज्ञानिक फैक्ट

शहद के दीर्घायु होने का विज्ञान

शहद एक ऐसा प्राकृतिक खाद्य पदार्थ है, जो सामान्य परिस्थितियों में वर्षों तक सुरक्षित रहता है और लगभग कभी खराब नहीं होता। इसके पीछे कोई चमत्कार नहीं, बल्कि उसकी विशिष्ट रासायनिक संरचना और प्राकृतिक गुण जिम्मेदार हैं। यही कारण है कि प्राचीन काल से शहद को न केवल भोजन, बल्कि औषधि के रूप में भी महत्व दिया जाता रहा है।

शहद में पानी की मात्रा बेहद कम होती है। आमतौर पर इसमें नमी 16 से 18 प्रतिशत के बीच रहती है, जबकि अधिकांश बैक्टीरिया और फफूंद को जीवित रहने और बढ़ने के लिए कहीं अधिक नमी की आवश्यकता होती है। पानी की कमी के कारण सूक्ष्मजीव शहद में पनप नहीं पाते। इसके साथ ही शहद में शर्करा की मात्रा बहुत अधिक होती है, जो लगभग 80 प्रतिशत तक होती है। इतनी अधिक शर्करा के कारण उसमें ऑस्मोटिक दबाव बहुत ज्यादा होता है, जिससे बैक्टीरिया और फफूंद की कोशिकाओं से पानी बाहर खिंच जाता है और वे निष्क्रिय हो जाते हैं।

शहद की प्रकृति हल्की अम्लीय होती है। इसका pH सामान्यतः 3.2 से 4.5 के बीच रहता है। यह अम्लीय वातावरण अधिकांश रोगजनक सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल नहीं होता, जिससे वे उसमें जीवित नहीं रह पाते। इसके अलावा शहद में प्राकृतिक जीवाणुरोधी तत्व भी पाए जाते हैं। मधुमक्खियां शहद बनाते समय उसमें ग्लूकोज़ ऑक्सीडेज नामक एंजाइम मिलाती हैं, जो नमी के संपर्क में आने पर हाइड्रोजन पेरॉक्साइड उत्पन्न करता है। यह पदार्थ बैक्टीरिया को नष्ट करने में सहायक होता है।

इतिहास में इसके प्रमाण भी मिलते हैं। मिस्र के पिरामिडों से हजारों वर्ष पुराना शहद प्राप्त हुआ है, जो आज भी सुरक्षित पाया गया। हालांकि यदि शहद में पानी मिल जाए, वह खुले या गीले बर्तन में रखा जाए या उसमें मिलावट हो, तो उसके खराब होने की संभावना बढ़ जाती है। सही ढंग से रखा गया शुद्ध शहद समय की कसौटी पर खरा उतरता है और प्रकृति का एक अनोखा, दीर्घजीवी खाद्य पदार्थ साबित होता है।

जंगल की दुनिया

छोटे शरीर में बड़ी सजा बुलेट चींटी का डंक

मध्य और दक्षिण अमेरिका के घने वर्षावनों में पाई जाने वाली बुलेट चींटी (Paraponera clavata) को दुनिया के सबसे दर्दनाक डंक वाले कीटों में गिना जाता है। प्रसिद्ध कीट विज्ञानी जस्टिन श्मिट द्वारा विकसित श्मिट स्टिंग पेन इंडेक्स में इसका स्थान सबसे ऊपर है। स्वयं श्मिट ने इसके दर्द की तुलना "गरम कोयलों पर चलते हुए एड़ी में कील ठोंक दिए जाने" से की थी। इस डंक का असर केवल तीव्र पीड़ा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि कई मामलों में यह दर्द 24 घंटे या उससे अधिक समय तक बना रह सकता है।

दिलचस्प बात यह है कि बुलेट चींटियां आक्रामक शिकारी नहीं होतीं। ये मुख्यतः जमीन और पेड़ों के निचले हिस्सों में रहती हैं और अपने डंक का उपयोग आत्मरक्षा के लिए करती हैं। इनका विष (venom) शिकार को मारने से ज्यादा शत्रु को डराने और लंबे समय तक निष्क्रिय करने के लिए विकसित हुआ है। यही कारण है कि डंक के बाद दर्द तो अत्यधिक होता है, लेकिन स्थायी शारीरिक क्षति अपेक्षाकृत कम होती है।

इसी तरह, टारेंटुला हॉक ततैया, कुछ बिच्छू और अन्य विषैले कीट भी ऐसे रक्षात्मक तंत्र अपनाते हैं, जिनका उद्देश्य मृत्यु नहीं बल्कि तीव्र, यादगार पीड़ा देना होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि ऐसा दर्द शिकारियों के व्यवहार को लंबे समय तक बदल देता है, वे भविष्य में उस प्रजाति से दूरी बनाए रखते हैं। इन कीटों के डंक पर किए गए अध्ययन हमें यह समझने में मदद करते हैं कि विकासक्रम (evolution) में दर्द किस तरह एक प्रभावी हथियार के रूप में उभरा। साथ ही, इन विषों के रासायनिक गुणों पर शोध से दर्द निवारण (pain management) और तंत्रिका विज्ञान के क्षेत्र में भी नई संभावनाएं खुल सकती हैं।

बुलेट चींटी और ऐसे अन्य कीट हमें यह सिखाते हैं कि प्रकृति में शक्ति हमेशा आकार या आक्रामकता में नहीं, बल्कि अनुभव कराए गए भय और दर्द की तीव्रता में भी निहित हो सकती है।

मृत्यु को चुनौती देने की मानवीय महत्वाकांक्षा व उसके वैज्ञानिक आयाम

मनुष्य ने सदियों से मृत्यु को अपनी सबसे बड़ी पराजय माना है। प्राचीन सभ्यताओं में अमृत की खोज, चीन के सम्राटों द्वारा जीवन रसायनों की तलाश और भारतीय पौराणिक कथाओं में अमृत मंथन की कहानियां इस बात की गवाह हैं कि अमरता मानव की सबसे पुरानी आकांक्षाओं में से एक रही है। 21 वीं सदी में यह खोज पौराणिक कथाओं से निकलकर अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं तक पहुंच चुकी है, जहां अरबों डॉलर की पूंजी और विश्व के श्रेष्ठ वैज्ञानिक इस प्रश्न से जूझ रहे हैं, क्या मनुष्य वास्तव में मृत्यु के विधान को बदल सकता है?

जयदेव राठी भराण
स्वतंत्र लेखक

विज्ञान की नई सीमाएं: कहां पहुंची है अमरत्व की खोज- आज एंटी-एजिंग और दीर्घायु अनुसंधान एक बहु-अरब डॉलर का उद्योग बन चुका है। विभिन्न अनुमानों के अनुसार, वैश्विक एंटी-एजिंग बाजार 2023 में 60 से 70 अरब डॉलर का था, जो 2030 तक 100 अरब डॉलर से अधिक हो सकता है। सिलिकॉन वैली के अरबपति इस दौड़ में सबसे आगे हैं। जेफ बेजोस द्वारा समर्थित एल्टोस लैब्स सेलुलर रीप्रोग्रामिंग पर काम कर रही है, जबकि गूगल की सहायक कंपनी कैलिको उम्र बढ़ने की जैविक प्रक्रिया को समझने में अरबों डॉलर खर्चकर रही है।

सैम ऑल्टमैन और ब्रायन जॉनसन जैसे तकनीकी उद्यमी स्वयं को "जीवित प्रयोगशाला" में बदल चुके हैं। ब्रायन जॉनसन अपने "ब्लूप्रिंट" कार्यक्रम पर हर साल लाखों डॉलर खर्च करते हैं और दावा करते हैं कि उनकी जैविक आयु वास्तविक आयु से कई वर्ष कम हो चुकी है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण: चार प्रमुख मार्ग- वैज्ञानिक दृष्टि से अमरता या दीर्घायु की खोज चार प्रमुख दिशाओं में आगे बढ़ रही है। पहली, सेनोलिटिक्स, जिसमें शरीर से बूढ़ी और क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को हटाने का प्रयास किया जाता है। चूहों पर इसके सकारात्मक परिणाम मिले हैं, लेकिन मनुष्यों पर व्यापक परीक्षण अभी जारी हैं।

- दूसरी दिशा टेलोमियर विस्तारण की है। टेलोमियर हमारे गुणसूत्रों के सिरे होते हैं, जो हर कोशिका विभाजन के साथ छोटे होते जाते हैं। इन्हें लंबा करने के प्रयास किए जा रहे हैं, हालांकि इससे कैंसर का जोखिम बढ़ सकता है।
- तीसरी दिशा नैनोटेक्नोलॉजी और आणविक मरम्मत की है, जहां भविष्य में नैनो-रोबोट्स द्वारा कोशिकाओं की मरम्मत की कल्पना की जा रही है।
- चौथी और सबसे विवादास्पद दिशा क्रायोनिक्स और माइंड अपलोडिंग की है, जिसमें मृत्यु के बाद शरीर या मस्तिष्क को अत्यंत निम्न तापमान पर संरक्षित किया जाता है, इस उम्मीद में कि भविष्य की तकनीक उन्हें पुनर्जीवित कर सकेगी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य: परंपरा और आधुनिकता का संगम

भारतीय दर्शन मृत्यु को जीवन के स्वाभाविक चक्र का हिस्सा मानता है। गीता का कथन- "जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:" इसी सत्य को रेखांकित करता है। यहां अमरता आत्मा के स्तर पर मानी गई है, शरीर के स्तर पर नहीं। आयुर्वेद ने दीर्घ और स्वस्थ जीवन पर जोर दिया, लेकिन शाश्वत शारीरिक अमरता को लक्ष्य नहीं बनाया।

आशा और यथार्थ के बीच

विज्ञान हमें अधिक स्वस्थ और लंबा जीवन दे सकता है, लेकिन मृत्यु को पूरी तरह परास्त करना अभी दूर की बात है। शायद असली प्रश्न यह नहीं है कि क्या हम अमर हो सकते हैं, बल्कि यह है कि क्या हमें अमर होना चाहिए। 120 वर्षों का रोगग्रस्त जीवन, 80 वर्षों के स्वस्थ, सार्थक और संतुलित जीवन से बेहतर नहीं कहा जा सकता। वास्तविक बुद्धिमत्ता शायद सीमाओं को पूरी तरह तोड़ने में नहीं, बल्कि यह समझने में है कि हमें कहां रुकना चाहिए।

व्यक्तिगत उपचार योजनाएं

इन तमाम प्रयासों के बावजूद वास्तविकता अपेक्षाकृत संयमित है। पिछले सौ वर्षों में वैश्विक औसत जीवन प्रत्याशा 30 से बढ़कर लगभग 73 वर्ष हुई है, लेकिन यह वृद्धि मुख्यत: बेहतर स्वच्छता, पोषण और चिकित्सा सुविधाओं के कारण है, न कि उम्र बढ़ने की मूल जैविक प्रक्रिया पर विजय के कारण। आज तक प्रमाणित अधिकतम मानव आयु 122 वर्ष ही है और पिछले दशकों में इस सीमा में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। मेटफॉर्मिन, रैपामाइसिन और एनएडी प्लस जैसी दवाओं ने प्रयोगशाला में जानवरों की आयु बढ़ाई है, लेकिन मनुष्यों पर उनके दीर्घकालिक प्रभाव अभी स्पष्ट नहीं हैं। अधिकांश वैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि हम "स्वस्थ जीवनकाल" बढ़ा सकते हैं, पूर्ण अमरता अभी विज्ञान कथा ही है।

इस खोज को गति देने में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका निर्णायक बनती जा रही है। एआई दवा खोज की प्रक्रिया को तेज कर रहा है, जैविक बायोमार्कर्स की पहचान में मदद कर रहा है और व्यक्तिगत उपचार योजनाएं तैयार कर रहा है।

एआई आधारित एल्गोरिदम अब किसी व्यक्ति की जैविक आयु का आकलन पहले से कहीं अधिक सटीकता से कर पा रहे हैं, लेकिन यह खोज गंभीर नैतिक और सामाजिक प्रश्न भी खड़े करती है। यदि दीर्घायु तकनीकें सफल होती हैं, तो क्या वे केवल अमीरों तक सीमित रहेंगी? क्या समाज में एक नया जैविक वर्गभेद पैदा होगा? जनसंख्या, संसाधन और पीढ़ियों के बीच अवसरों का संतुलन भी एक बड़ी चुनौती बन सकता है।